The International Journal of Advanced Research In Multidisciplinary Sciences
(IJARMS)
Volume 1 Issue 1, 2018

गयावाल का सांस्कृतिक विघटन

Mk0 jkt jkuh JhokLro
सहायक प्रध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महेश सिंह यादव कॉलेज गया ।

समाज परिवर्तनशील है। मनुष्य का जन्म होता है। समूह के बीच उसका विकास होता है। जीवन में वह अपनी विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करता है और फिर समाप्त हो जाता है। एक पीढ़ी की सामप्ति के बाद दूसरी पीढ़ी उसका स्थान लेती है। नई पीढ़ी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं और कार्य प्रणालियों में परिवर्तन करती है। आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ सामाजिक संस्थाओं और संगठनों में भी परिवर्तन होता है। जाति-व्यवस्था भी भारतीय सामाजिक जीवन की एक मुख्य संस्था है। इसमें भी समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। यह कहना, जैसा कि अन्धविश्वासियों का मत है, सर्वथा गलत होगा कि जाति-व्यवस्था में कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं है। पर हाँ, जाति-व्यवस्था की परिवर्तन की गति इनती धीमी है कि जल्दी पता नहीं चलता है, पर परिवर्तन निरन्तर नियम है। प्रस्तुत अध्याय में गयावाल जाति में होने वाले परिवर्तन तथा पायी जाने वाली विभिन्नता का परीक्षण किया गया है। इसमें वर्तमानकालीन गयावाल समाज के प्रसार तथा आधुनिकता के कारण उस पर होने वाले प्रभाव की जाँच की गई है। गयावालों ने संस्कृति तथा सभ्यता के अनेक उत्थान और पतन का सामना किया है। इस दौरान उन्होंने अनेक ऐसे तत्वों को अपने संगठन तथा जीवन-पद्धति में सम्मिलित किया है, जिसका कोई सम्बन्ध पुरोहिती कार्य से नहीं की है।

गयावाल पुरोहितों को तीन सांस्कृतिक भागों में विभाजित किया गया है-संस्कृत, जागीरदार तथा अधम इन तीनों की तुलना उनकी परम्परागत या आदर्श जीवन-पद्धति से की जा सकती है। यह तुलना उनकी आधुनिक आदर्श तथा वास्तविक जीवन-धाराओं के बीच के अन्तर को समझने में सहायक हो सकती है। गयावालों के बीच ये जो तीन सांस्कृतिक विभाग हैं, उनसे उनकी तीन विकास सीढ़ियों का भी पता चलता है। उनके विकास की प्रथम सीढ़ी थी संस्कृत। अधम उनके वर्तमान युग की स्थिति है। जागीरदारी इन दोनों के बीच की संधि का युग कही जा सकती है। गयावालों के लम्बे इतिहास को देखते हुए उनके विकास की एक और स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। यह वह स्थिति है जिसमें गयावालों को लोक पुरोहित कहा जा सकता है। इस स्थिति को हम वर्तमान कालीन धामी पुरोहितों में भली-भाँति देख सकते हैं। गयावालों के मध्य में आज जो प्रेत, ओझा आदि से सम्बन्धित लोक विश्वास विद्यमान हैं, वे इसी स्थिति की ओर निर्देश करते हैं।1

अभी भी गयावालों के बीच उनकी ये चारों विशिष्टताएँ-लोक, संस्कृत, जागीरदारी तथा अधम, उधम उपसंस्कृतियों के रूप में वर्तमान है। बिना दूसरे व्यक्ति की सहायता के आज कोई भी व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता। गयावाल पुरोहित के सम्बन्ध में भी यह समझना आवश्यक है कि जैसे-जैसे उनकी स्थिति में परिवर्तन आता गया, पहली स्थिति दूसरी स्थिति को स्थान देती गई। परन्तु अनुगामी स्थितियों ने अपने पहले की स्थितियों को कभी भी पूरी तरह नष्ट नहीं किया।

गयावालों की उपर्युक्त चार सांस्कृतिक श्रेणियों का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। ब्रिटिशकालीन पुस्तकों तथा सर्वे से यह जानकारी मिलती है कि गयावालों की जीवनधारा में इन चार तत्वों का समावेश हो गया है। गयावालों की लोक विशिष्टताओं का विवरण बुचानन ने 19 वीं शताब्दी में दिया है। उनके लेखों से यह ज्ञात होता है कि उस समय के गयावालों के आचरण में विद्वता की कमी तथा वैराग्य की कठोरता की शुरूआत हो चुकी थी। उन्होंने गयावालों की कुछ संस्कृत विशेषताओं का भी उल्लेख किया है।2 परन्तु गयावाल-जागीरदारी की कोई चर्चा उन्होंने अपने लेखों में नहीं की है। बुचानन से करीब

एक सौ वर्ष बाद विलियम क्रूक3 ने गयावालों को अध्ययन किया। उन्होंने ही सबसे पहले गयावाल जागीरदारी की चर्चा की। ओ. मैली4 ने गयावालों की जीवनधारा में जागीरदारी तथा संस्कृत दोनों तत्वों का उल्लेख किया है। श्राद्ध पुरोहित के रूप में गयावाल और धामी की तुलना करते हुए मैली ने गयावालों को 'ब्राह्मणिकल' (संस्कृत) तथा धामी को 'अवारिजिनिल' (लोक) पुरोहित की संज्ञा दी। किसी निष्कर्षात्मक महत्व की दृष्टि से ये विवरण अपर्याप्त हैं, किन्तु गयावालों की जीवनधारा में होने वाले परिवर्तन को समझने में सहायक है।

गयावालों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्यानों का कहना है कि गयावाल जाति भी धामी की भाँति किसी समय आदिम जाति थी। बाद में इसने ब्राह्मण की पदवी धारण की और अपनी जीवन-पद्धति को 'संस्कृत' कर लिया। बुचानन5, काश्यप6, तथा मित्रा7 का विचार है कि शंकराचार्य ने उन बौद्ध महंतों को गयावाल नाम दिया, जिसने उनके आग्रह पर हिन्दू धर्म को अपनाया और जीविका चलाने के लिए श्राद्ध पुरोहित कार्य करने लगे। कुछ अन्य लेखकों, जिनमें आर. बी. लाल तथा एन. डी. एल. गुर्दा के अनुसार सतरहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में गयावाल-परिवारों को सम्मिलित करके गया नगर के उस मुहल्ले में बसाया गया, जहाँ वे आज संगठित रूप से निवास करते हैं। इस प्रकार गयावाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अभी तक जो भी तर्क प्रस्तुत किये गये हैं उसके आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है। केवल यही कहा जा सकता है कि गयावाल जाति हमेशा से परिवर्तनशील रही है। आज जो विशेषताएँ उनकी जीवनधारा में पायी जाती है, वे अतीत में कुछ और भिन्न रूप लिए हुए थी।

भूतकल में गयावाल जाति अनेक विपरीत परिस्थितियों से होकर गुजरी है। साथ ही इसमें दूसरी जातियों के पुरोहित वर्ग के लोग शामिल हुए हैं। गयावालों की उपाधियाँ जाति समूहों तथा गाँवों के नाम पर हैं। ये ऐतिहासिक प्रमाण गयावाल जाति की भिन्नता और रचना को समझने में सहायक हो सकते हैं। गयावाल जाति आज एक सुव्यवस्थित जाति है तथापि हमें कुछ ऐसे प्रमाण भी प्राप्त हैं जिनसे यह बात अकाटय हो जाती है कि

गयावाल जाति में समय-समय पर अन्य जाति के पुरोहित आकर मिल गए हैं और गयावालों की जो अभी जाति है, वह शुद्ध नहीं, मिश्रित है।8

सन 1800 ई. से 1920 ई. तक गयावालों के बीच जागीरदारी अवस्था विद्यमान थी। इस अवधि में गया आने वाले तीर्थ यात्रियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई, जिसे निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया हैः-

तालिका -.1

जागीरदारी काल में तीर्थयात्रियों की संख्या में वृद्धि

वर्ष	तीर्थयात्री	साधन	विचार
1792	17,670	ओ. मैली (1906:62)	अधिकार खाते (लाईसेंस रेकॉर्ड्स)
1805	31,114	ओ. मैली (1906:62)	अधिकार खाते
1811	1,00,000	बुचानन (1811-12:106)	अधिकार खाते
1906	3,00,000	ओ. मैली (1906:66)	अनुमानित प्राक्कलन

इस तालिका से यह विदित होता है कि तीर्थ यात्रियों की संख्या 1792 में 17,670 थी जो बढ़कर 1906 में 300000 हो गई। अर्थात् इस अवधि में तीर्थयात्रियों की संख्या में 16 गुणा से अधिक की वृद्धि हुई। तीर्थयात्रियों की संख्या में वृद्धि के दो मुख्य कारण हैं। पहला आवागमन के साधनों का विकास तथा दूसरा कानूनी सुरक्षा। भारत के विभिन्न भागों में इस्ट इंण्डिया कम्पनी तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा आवगमन के साधनों का विकास किया गया। पुरानी सड़कों की मरम्मत की गई और नई सड़कों का निर्माण किया गया। नदियों पर पुल बनाये गये और नदी में चलने वाले जहाजों का प्रबन्ध किया गया। जाल के समान रेल लाईन बिछाए गये। कलकत्ता से दिल्ली तक जाने वाली सड़क, जो ग्रैंड ट्रंक रोड कहलाता है, गया से सिर्फ तेरह मील दूर है। गया से एक सड़क बिहार की राजधानी पटना भी जाती है। यह सड़क गया को गंगा के जल-यातायात से जोड़ देती है। भारत के सभी भागों से रेलमार्ग गया से मिलते हैं। इस तरह गया एक महत्वपूर्ण जंक्शन बन गया है।

कानूनी सुरक्षा के अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था की गई जिससे तीर्थयात्रियों का शोषण न हो। पहले जब तीर्थयात्री गया आते थे तो जमींदारों तथा छोट-छोटे सरकारी

अधिकारियों द्वारा बनाये गये मकान में ठहरते थे। ये मकान तीर्थयात्रियों से पैसा लेने तथा परेशान करने के लिए बनाये गये थे। गया के तत्कालीन कलेक्टर मिस्टर लौ ने एक नियम बनाकर इन मकानों का उन्मूलन कर दिया। विशेष अधिकारी वर्ग की नियुक्ति की गई जिससे तीर्थयात्री निर्भयतापूर्वक रास्ते में बिना किसी परेशानी के आ-जा सकें। तीर्थयात्रियों के आवगमन को नियमित करने तथा सरकार के वित्तीय साधनों को बढ़ाने के लिए एवं फैले हुए अत्याचार को रोकने हेतु प्रत्येक तीर्थयात्री पर 2 रू0 से 14 रू0 तक का एक अधिकार-शुल्क लगा दिया गया।

आवागमन की सुविधा तथा कानूनी सुरक्षा के कारण तीर्थयात्रियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। अब गरीब तथा अमीर दोनों तरह के लोग अधिकाधिक संख्या में गया आने लगे हैं। इस कारण तीर्थयात्रियों की संख्या में क्रमशः वृद्धि हो रही है। फिर भी तीर्थयात्रियों से सम्बन्धित गयावालों के कार्य-व्यवहार में किसी भी तरह की कांट-छांट सरकार द्वारा नहीं की गई। तीर्थयात्रियों को ठहराने, उन्हें विभिन्न धार्मिक केन्द्रों में घुमाने तथा उनसे भेंट प्राप्त करने के लिए गयावाल स्वतंत्र है। गयावालों के एकाधिपत्य के कारण उन्हें या तो आग्रह के कारण या अनिवार्यतः तीर्थयात्रियों से धन वसूल करना छोड़ देना पड़ा। गयावालों को अपने धनी जजमानों से कीमती भेंट तथा गरीब जजमानों से साधारण दाम की वस्तुएँ मिलती रही। उन दिनों कॉफ़ी संख्या में आने वाले मराठा तथा बंगाली तीर्थयात्री किस प्रकार अपनी मूल्यवान भेंटों से गयावालों को पुरस्कृत करते थे इसका उल्लेख बुचानन10 ने इन शब्दों में किया है-

'बंगाल के तीर्थयात्री वास्तव में अनाज, काँसे के बर्तन, चाँदी के सिक्के तथा कपड़े देते हैं। कभी-कभी वे गाय भी दान में दिया करते हैं।.....मराठे लोग रूपये, जवाहरात, बर्तन, कीमती वस्त्र, हाथी तथा घोड़े दान में देते हैं। बंगाल का जो भी तीर्थयात्री पैंतालीस स्थानों में पूजा करता है, वह प्रायः 40 से 200 रू. तक खर्च कर देता है। उनमें से कुछ तो 500 रू. तक गया में खर्च कर देता है। कुछ इने-गिने अमीरों का खर्च तो 5000 रू. तक चला जाता है। प्रायः सभी मराठे पैंतालीस तीर्थस्थलों में पूजा करने जाते हैं और उनमें से अधिकांश लोग 5000 रू. से कम इस कार्य में खर्च नहीं करते। इनमें जो

धनी-मानी होते है, उनका खर्च 50,000 रू. तक पहुँच जाता है। यह खर्च यात्रा और अन्य प्रकार के खर्च के अलावा होता है।'

गयावालों की आमदनी के सम्बन्ध में ओ. मैली ने भी 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विवरण दिया है। उनके अनुसार , ''धनी-मानी बहुत ही बड़ी-बड़ी रकम दान में दिया करते हैं। 'प्रनामी' तथा दान में दी जाने वाली भेंट केवल द्रव्य के रूप में ही नहीं है, अपितु जमीन-जायदाद, हाथी-घोड़े, जवाहरात, मोटरगाड़ी तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के रूप में दी जाती है। गयावाल इन्हें बड़े हर्ष के साथ ग्रहण करते हैं और अपना अहोभाग्य मानते हैं। पुणे के एक पेशवा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने केवल शुल्क के रूप में ही एक लाख रूपया दिया था। काश्मीर के राजा रणवीर सिंह के बारे में भी कहा जाता है कि उसने करीब तीन लाख के जवाहरात और बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में दी थी।' '

तीर्थयात्रियों से प्राप्त धन से गयावाल धनाढ्य हो गये। उन्हें धनी जजमानों से केवल धन की ही प्राप्ति नहीं हुई, बल्कि संभोग और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने की रीति का भी ज्ञान प्राप्त हुआ। अब गयावाल केवल पुरोहित ही नहीं रहे, बल्कि बड़े जागीरदार बन गये।

गयावालों ने इस काल में भव्य मकानों का निर्माण करवाया। इन मकानों को पलंग, शीशा, कालीन, स्वर्ण तथा चाँदी के बर्तन, जरी के कपड़े तथा बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित करवाया। रईसों की भाँति उनके भोजन होते जो मराठी ब्राह्मणों के निरीक्षण में तैयार किये जाते थे। उनकी वेशभूषा अत्यन्त भड़कीली होती थी। जब वे शाही संरक्षकों तथा अंगरेज अधिकारियों से मिलने जाते थे तो उसे पहन लेते थे। वे घोड़े की बग्गी अथवा नौकरों द्वारा ढोई जाने वाली पालकी का इस्तेमाल कहीं आने-जाने के लिए करते थे। कुछ तो हाथी भी रखते थे। बाद में कुछ गयावाल मोटरगाड़ी भी रखने लगे।

ब्राह्मण तथा गैर ब्राह्मण दोनों प्रकार की जातियों से गयावालों ने कुछ सेवक बहाल किये ताकि उनके सुख की सिद्धि हो और जजमानों के धार्मिक और लौकिक कार्यों को भली -भाँति निपटाया जाए। जजमानों की संख्या में जैसे-जैसे वृद्धि हुई वैसे-वैसे गयावालों ने पुरोहितों की नियुक्ति की। ये पुरोहित जजमानों को भिन्न-भिन्न धार्मिक

केन्द्रों पर घुमाने के लिए तथा पूजा कराने के लिए ले जाते थे। कुछ धनी संरक्षकों के साथ गयावाल स्वयं जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे गयावाल श्राद्ध विधि क्रिया के ज्ञान से वंचित होते गये। अब तो श्राद्ध विधि क्रिया की देखभाल करना पुरोहितों का काम रह गया। गयावालों का काम इतना ही है कि वे श्राद्ध विधि क्रिया के आरम्भ में और उसके समाप्त होने पर पाद-पूजा करवाएँ और उनसे दान-दखिणा या भेंट लें। गयावालों के सेवक केवल उनके धार्मिक और लौकिक कार्यों में ही हाथ नहीं बटाते, बल्कि वे उनके घरेलू कार्यों को भी करते थे। गयावाल नौकरों के अलावा रक्षकों तथा पहलवानों को भी नियुक्त करते थे। वे पहलवान उनकी सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा की रक्षा करते थे तथा तीर्थयात्रियों से भली-भाँति निपटने में मदद करते थे। इस प्रकार गयावाल गया के निष्क्रिय लेकिन शक्तिशाली अध्यक्ष थे। गया धार्मिक केन्द्र के सम्पूर्ण कार्य उनके प्रतिनिधियों तथा कर्मचारियों द्वारा संभाला जाता था। उनकी हैसियत कहाँ तक थी यह जानने के लिए उन्हें एक-एक गद्दी दी गयी थी। जिन क्षेत्रों से उन्हें तीर्थयात्रियों को स्वागत करने का अधिकार प्राप्त था, वे उनकी रियासत कहलाती थी। वे प्रतिवर्ष जिन-जिन जजमानों का स्वागत करते थे, वे उनकी फसल कहलाए। दूसरे शब्दों में, गयावालों ने अपनी पुरोहित अवस्था को जाहिर करने के लिए जागीरदारी शब्दों का ही प्रयोग किया।

गयावाल रायसाहब तथा रायबहादुर जैसी शाही उपाधियाँ सहर्ष स्वीकार कर लेते थे। इसके अलावे वे दण्डाधिकारियों तथा जूरियों के पद स्वीकार कर लेते थे। यद्यपि ये पद अवैतनिक होते थे, परन्तु ये पद काफी सम्मानित होते थे। तीर्थयात्रियों को ये उपाधियाँ तथा पद काफी आकर्षित करते थे। बूढ़े गयावाल ऐसे गयावालों को जानते हैं जिन्हें शाही पदवी मिली थी। गयावाल बूढ़ों का कहना है कि दो गयावाल दण्डाधिकारी भी नियुक्त किये गये थे और कई गयावालों को जूरी का काम करने के लिए बुलाया गया था। कई गयावालों को 1911 ई. में जार्ज पंचम के स्वागत में आयोजित दिल्ली दरबार में बुलाया गया था। अभी भी गयावालों ने अपने उन पूर्वजों की तस्वीरें सुरक्षित रखी हैं,

जिन्होंने कभी विख्यात अधिकारियों, संरक्षकों, संगीतज्ञों तथा पहलवानों को हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न कोने से बुलाया था।

स्थानीय क्लब, जिसे बैठक कहा जाता है, की स्थापना कुछ गयावालों द्वारा की गई। किसी बैठक का सरदार होना गयावालों के लिए विशेष ओहदे और सम्मानकी बात होती है। प्रत्येक गयावाल पुरूष किसी-न-किसी बैठक के सदस्य होते थे। विशेष आयोजनों के अवसर पर दूसरी बैठकों में जाना भी उनके लिए बड़े सम्मान की बात समझी जाती थी। इन बैठकों में वे अभ्यागतों के मनोरंजन के लिए सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों, वेश्याओं तथा पहलवानों को बुलाते थे। इन्हीं बैठकों में गयावाल संगीत या कुश्ती या दोनों की साधना करते थे। अभी भी गयावाल उन संगीतज्ञों तथा शास्त्रीय गायकों का नाम बड़े स्नेह से लिया करते हैं जो देश भर में नामी हो गये हैं।

कलाकारों, संगीतज्ञों तथा पहलवानों को गयावाल आमंत्रित करते थे। इसका दो उद्देश्य था। पहला उद्देश्य था उनका चमत्कार देखना तथा दूसरा उद्देश्य था नवयुवकों को इसकी शिक्षा देना। इनमें अनेक तो गयावालों की संरक्षता में गया में आकर बस गये। अभी भी उनके घरानों में संगीत तथा कुश्ती आदि कलाओं का वंशगत गुण विद्यमान है। कुछ बैठकों में नर्तकियों को किराये पर रखा जाता था। ओ. मैली (1901)11 तथा कुक (1907)12 दोनों ने इस बात की चर्चा करते हुए यह कहा है कि नाच देखने, पान खाने और गाँजा पीने में गयावाल कई रात यों ही काट लिया करते हैं। इन मनोरंजनों के अतिरिक्त कुछ गयावालों ने चिड़ियां पालने का शाही व्यसन भी धनी मुसलमानों से सीखा था। परन्तु ये साधन अब धीरे-धीरे नष्ट हुए जा रहे हैं। अपने व्यक्तिगत जीवन में गयावाल यद्यपि भोजन, विधि क्रियात्मक स्नान, मंदिर तथा पूजा के स्थानां के दर्शन और धार्मिक उपवास या यांत्रिक पूजा आदि के नियमों का भली-भाँति पालन करते हैं। तथापि नित्यप्रति की पूजा के सम्बन्ध में वे बिल्कुल लापरवाह हैं। वास्तव में वे ब्राह्मणों के लिए निर्देशित संस्कृत के नियमों की तरफसे एकदम उदासीन हैं।

रखेल प्रथा भी इस काल में बहुत प्रिय थी। यौन शिथिलता के साथ-साथ वेश्यागमन भी पाया जाने लगा था। विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कार पहले की तुलना में

अब अधिक आडम्बरपूर्ण, बनावटी और द्रव्य के समारोह बन गये। विवाह में गयावाल काफी खर्च करते हैं। निकट सम्बन्धियों के दाह तथा श्राद्ध संस्कार के अवसर पर भी पैसे लुटाये जाते हैं।

कूक (1907)13 ने जागरदारी काल की गयावाल औरतों की चर्चा करते हुए उनके सम्बन्ध में कहा कि वे पान बनाती, पान चबाती और घर के छोटे-मोटे कामों में व्यस्त रहती हैं। भोजन बनाने का काम वे उन औरतों पर छोड़ देती हैं जो इसके लिए रखी जाती है। बच्चों के पालन-पोषण का भार वे मुख्यतः दासियों पर छोड़ देती हैं। फिर भी वे स्वयं बच्चों को दूध पिलाती हैं। उनमें पर्दा-प्रथा का प्रचलन है। पड़ोसियों तथा रिश्तेदारों के अलावा औरतों को किसी से मिलने नहीं दिया जाता है। अपनी चहारदिवारी के अन्दर ही वह गपशप करती तथा घरेलू कामों में व्यस्त रहती है। परिवार के अन्य स्त्री सदस्य उनके साथ रहते हैं। पुरूष अपना अधिकांश समय अपनी बैठक में बिताते हैं। साधारणतः गयावाल औरतें अपना समय व्यर्थ के गपशप में व्यतीत करती हैं।

सन् 1920 ई. से गयावालों के अधम-काल की शुरूआत होती है। इनका आर्थिक और सामाजिक विघटन भी इसी काल से शुरू हो जाता है। जागीरदारी और अधम काल के बीच जो परिवर्तन हुए, उनको गयावालों के जाति-संगठन तथा हिन्दू-जगत में होने वाले भिन्न-भिन्न विकासों के आधार पर समझा जाता है। ये दोनों प्रकार के विकास इस तरह अन्योन्याश्रित हैं कि एक को दूसरे की सहायता के बिना समझा नहीं जा सकता है।

वास्तव में अभी गयावाल बुरे दिनों से गुजर रहे हैं। इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि तीर्थयात्रियों की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। दूसरा कारण यह है कि गयावाल को अब कीमती भेंट प्राप्त नहीं होता है। जो तीर्थयात्री आते हैं वे अब भेंट के रूप में जमीन-जायदाद, हाथी-घोड़े, जवाहरात तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ नहीं देते, बल्कि द्रव्य के रूप में कुछ रकम देते हैं। भेंट की राशि भी आपस में बाँट ली जाती है।

प्रतिवर्ष कितने व्यक्ति तीर्थयात्रा करने गया आते हैं यह बताना कठिन है। एक अनुमान के अनुसार गया में प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक तीर्थयात्री आते हैं। तीर्थयात्रियों की संख्या में जो कमी-वेशी होती है उसका कारण प्राकृतिक आकस्मिक प्रकोप, बाढ़,

अकाल आदि होता है। गयावालों को जो दान-दक्षिणा तीर्थयात्रियों से मिलता है उसकी मात्रा भी कम हुई है। वे कीमती भेंट और दान जिसकी चर्चा ओ. मैली और बुचानन ने की है, अब गयावालों को नहीं मिलते हैं। राजकुमार और राजे अब कम आते हैं। पंडों को अब साधारण जजमानों के दानों से ही संतुष्ट होना पड़ता है।

गयावालों को तीर्थयात्रियों से जो दान प्राप्त होता है, वह पूरा उसी का नहीं होता है। उसी में से कुछ हिस्सा पुरोहितों, रोजगरया तथा मंशी को दिया जाता है। इसके अलावा तीर्थयात्रियों को अधिकारपूर्वक ठहराने के लिए दान का कुछ भाग सरकार को भी देना पड़ता है। अतः यह स्पष्ट है कि दान या भेंट का बड़ा हिस्सा बँट जाता है। मुश्किल से 20 प्रतिशत भेंट ही गयावालों को मिलता है।

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई कि गया में तीर्थयात्रियों की संख्या में कमी आयी है तथा उनसे मिलने वाली भेंट की मात्रा में कमी आयी है। साथ ही कुछ नये मध्यस्थ भी आ गये हैं जो गयावालों को मिलनेवाली भेंट का बँटवारा चाहते हैं। ये सब तीर्थयात्रियों पर गयावालों के एकाधिपत्य को तोड़ने की दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते। गयावालों के बीच जो परिवर्तन हो रहे हैं उसके कारण कुछ और ही है।

ऐतिहासिक घटनाओं पर गौर करने पर यह पता चलता है कि अधम काल के आरम्भ में जो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ घटी उसके कारण ही तीर्थयात्रियों की संख्या में कमी आयी। इस काल मं अनेक दंगे और आन्दोलन हुए। विश्वयुद्ध के प्रभाव के कारण भारतवर्ष में आर्थिक कठिनाईयों के साथ-साथ आवगमन की दिक्कतें भी बहुत बढ़ गई।

भारत में सन् 1947 के बाद कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुई, जिससे गयावालों की स्थिति और खराब हो गई। पहली घटना तो देश का विभाजन थी। देश के विभाजन से पहले पूर्वी बंगाल, पश्चिमी बंगाल, सिंध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश से बड़ी संख्या में तीर्थयात्री गया आते थे। वहाँ के जजमानों के दानों पर गयावालों की जीविका निर्भर करती थी। परन्तु शरणार्थियों के जीवन और सम्पत्ति खो जाने से इन क्षेत्रों में गयावालों के धार्मिक साम्राज्य सामाप्त हो गये।

दूसरी घटना यह है कि 1947 में जब देश आजाद हुआ तो आजादी के बाद देशी रियासतों की जब्ती हुई और जमींदारी प्रथा को समाप्त किया गया। इससे गयावालों की आर्थिक स्थिति को जबर्दस्त हानि हुई। क्योंकि राजाओं, राजकुमारों तथा जमींदारों से उन्हें बहुत दान-दक्षिणा मिलता था। ये लोग अपने मृत पूर्वजों के नाम पर उन्हें बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट के रूप में देते थे। कीमती-से-कीमती दान देने में इन्हें कोई हिचक नहीं होता था। इन लोगों के द्वारा केवल श्राद्ध के समय ही दान नहीं दिया जाता था, बल्कि गयावालों के आगमन पर भी ये दान देते थे। इनमें से कुछ लोग तो नियमित रूप से दान देते थे। अतएव यह कहा जा सकता है कि देशी रियासतों की जब्ती और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के कारण, गयावालों की आमदनी का बड़ा स्रोत खत्म हो गया। अब तो गयावालों की सम्पत्ति नष्ट हो गई। मृतक कर के लागू होने के कारण अब कोई जजमान अपने पूर्वजों के श्राद्ध के अवसर पर बहुत अधिक खर्च करने का स्वप्न भी नहीं देख सकता है। गयावालों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति पर इन घटनाओं का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

इन घटनाओं के अलावे कुछ और कारक हैं, जिसने पितृ और गयावालों को भेंट देने के सम्बन्ध में लोगों की धारणा को, उनके विचार को तथा उनकी मनोवृति को बदला है। इन कारकों में संयुक्त परिवार का विघटन, आधुनिक आवश्यकताओं तथा अभिलाषा में बढ़ोत्तरी, वैज्ञानिक तथा लौकिक शिक्षा का प्रसार, ग्रामोत्थान सम्बन्धी कार्यक्रम मुख्य हैं। इन कारकों के फलस्वरूप शिक्षित हिन्दुओं में नई चेतना उत्पन्न हुई है, उनकी मानसिक अवस्था को बदला है। ऐसे लोग अब यह समझने लगे हैं कि जिन लोगों की मृत्यु हो गई है उनके नाम पर खर्च करना मूर्खता है। लालची तथा दुश्चरित्र पुरोहितों को दान देना उनकी दृष्टि में पागलपन है। वास्तव में इस तर्क में लौकिकता तथा व्यापार की भावना आ गई है। ये लोग पुनर्जन्म में अविश्वास नहीं करते, परन्तु गया श्राद्ध और पिण्डदान के कुछ अंशों को ये संदेह की दृष्टि से देखते हैं। फिर भी इनमें से कुछ लोग पुरानी रीति, परम्परा तथा भय के वजह से गया श्राद्ध करने तथा पिण्डदान देने के लिए आ जाते हैं और उस वक्त गयावालों को दान देने को विवश हो जाते हैं। अपने जजमानों से

अधिक-से-अधिक दान लेने के अब कोई उपाय गयावालों के पास नहीं हैं। अब अनेक लौकिक आढ़त उद्यत रहती है, जो तीर्थयात्रियों को परेशानी से बचाती हैं।

इन बाह्य कारणों के अलावा कुछ अन्य कारण भी हैं, जिसने गयावालों को अधम-काल में जाने के लिए बाध्य किया और उनके बीच विशेष स्थिति पैदा की। अपने जागीरदारी काल में गयावाल अपनी पुरोहिती की जिम्मेदारी को नहीं निभाते थे। उसके प्रति वे लापरवाह थे। अपने सेवकों और प्रतिनिधियों के ऊपर वे इस भार को सौंप दिये थे। उनके प्रतिनिधि ही सभी धार्मिक और लौकिक कार्य को सम्पन्न कराते थे। जजमानों को वे समूह में तथा गन्दे मकानों में ठहराते थे, जिससे हैजा, प्लेग, चेचक आदि महामारियाँ फैल जाती थी। आज भी पितृपक्ष के मेले में गया में महामारी फैलना एक मामूली-सी बात है। 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में गया में प्लेग और हैजे से बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई और शहर की आबादी काफी कम गई।

तीर्थयात्रियों की करूण अवस्था तथा बीमारी को देखते हुए यह आवश्यकता महसूस की गई कि इसके निराकरण की लिए सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएँ सहयोग करें। सन 1920 ई. में गयावालों के विरोध को नजरअन्दाज कर सरकार ने बिहार और उड़ीसा तीर्थस्थान धारा लागू किया। फलतः गयावालों का तीर्थयात्रियों पर एकाधिकार समाप्त हो गया। तीर्थस्थानों के सुधार एवं तीर्थ यात्रियों के ठहराव के लिए अनेक प्रबन्ध किये गये। तीर्थयात्रियों को अब अधिकृत घर्मशालाओं में ही ठहराया जा सकता था, जिसकी देखभाल अधिकृत चिकित्सक तथा प्रशासक अधिकारी द्वारा भली भाँति की जाती थी। तीर्थयात्री-धारा को सफल बनाने के लिए सभी तरह के प्रतिबन्ध किये गये थे। इस प्रकार तीर्थ स्थान के संगठन के लिए जिला तथा नगर प्रशासन के स्तर पर एक टोली बना दी गई।

तीर्थयात्री-धारा को सुफल बनाने तथा उससे सम्बन्धित अन्य नियमों के निर्माणार्थ प्रशासक अधिकारी तथा शहर के चुने-चुनाए नागरिकों की एक अलग समिति बनायी गई, जिसे 'आवास-गृह समिति' कहा गया। इस समिति को गयावालों तथा मकान मालिकों से प्रति तीर्थयात्री 3 रू. लेने का अधिकार दिया गया। समिति ने हर एक

मकान या शाला में एक निश्चित संख्या में तीर्थयात्रियों को ठहराने की अनुमति दी। पुराने तथा अव्यवस्थित मकान, जहाँ गयावाल अपने जजमानों को ठहराते थे, आयोग्य घोषित कर दिये गये। फलतः गयावालों को अपने तीर्थयात्रियों को ठहराने के लिए गया के लौकिक क्षेत्रों में किराये पर मकान लेने पड़े। इससे गयावालों के बहुत-से मकान उजाड़ हो गये और सरकारी पदाधिकारियों तथा आवास-गृह समिति के सदस्यों को गयावाल तथा अन्य लोभी मकान मालिकों के कारनामों का पता लग गया। इन वजहों से पंडा-जजमान सम्बन्ध में जटिलता आ गई। तीर्थयात्रियों का स्वागत करना अब कठिन बात हो गई। साथ ही किसी तीर्थयात्री के साथ अत्याचार करने की सम्भावना भी बहुत कम हो गई।

तीर्थयात्रियों को तीर्थयात्री-शिकारी, प्रतियोगी गयावाल तथा उनके प्रतिनिधियों के कुख्यात झगड़े तथा छीना-झपटी से बचाने और उचित मकोनों या शालाओं में ठहराने के लिए अनेक गैर सरकारी समाज-सेवी संस्थाओं ने अपनी सेवाएँ अर्पित की, जिनमें युवक बालचर, नागरिक मंच, तीर्थयात्री कल्याण संस्था मुख्य हैं। ये सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएँ यद्यपि गयावालों की स्वतंत्रता को भंग करने में सहायक रही हैं तथापि वे तीर्थयात्रियों से सम्बन्धित गयावालों के कलहपूर्ण दावे की भिन्न-भिन्न समस्याओं को सुलझाने में बिल्कुल असमर्थ हैं। वे तीर्थयात्रियों को उनके शिकारियों से जो रेल तथा सरकारी अधिकारियों को रिश्वत देकर अपना काम निकाल लेते हैं, कुछ अंश तक बचाने में असमर्थ हैं।

अपनी समृद्धि के दिनों में गयावाल ने अमीर जागीरदारों के सम्पर्क से जागीरदारी जीवन को विकसित किया था। गया में होने वाले विकासों ने उनके इस जागीरदारी जीवन को बहुत कुछ बदल दिया। जैसे-जैसे भारतीय परिस्थिति का नक्शा बदला वैसे-वैसे गयावालों की जीवन-धारा में परिवर्तन होने लगा।

एक लम्बी अवधि तक गयावालों ने पुरोहित की हैसियत से एक अपूर्व विधि व्यवहारिक उपाधि का उपयोग किया। लेकिन जब धामी लोगों ने जजमानों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना शुरू किया, गयावालों की वह पूर्व वाली स्थिति नहीं रही। गयावालों ने धामियों के विरूद्ध मुकदमें दायर किये, परन्तु गयावालों की आपसी कलह

और प्रतिद्वन्दिता के कारण धामियों को कोई क्षति नहीं हुई। विधि-क्रिया सम्पन्न कराने के जिन आचार्यों की नियुक्ति गयावालों द्वारा की गई वे पुरोहित अपने को गयावालों की ही अवस्था का और कभी-कभी तो उनसे भी उँची अवस्था का होने का दावा करते हैं। अपनी ओर से वे भी तीर्थयात्रियों का स्वागत करने और सम्पूर्ण विधि-क्रिया करा देने का प्रयास करते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि कुछ विद्वानों को पौराणिक कथा की प्राचीनता पर संदेह है। वे गयावालों को एक अलग पुरोहित दल का सदस्य मानते हैं जो बाद में चलकर एक कट्टर धर्मनिष्ठ जाति के रूप में संगठित हुए।

धीरे-धीरे गयावाल टोलों की धनता तथा एकरूपता भी समाप्त होती जा रही है। जो मकान पहले गयावालों के परिवारों से आबाद रहते थे या तीर्थयात्रियों के ठहरने के काम आते थे वे गयावालों की लापरवाही के चलते उजाड़ होते जा रहे हैं। ऐसे अनेक मकान तो बेच भी दिये गये हैं। गयावालों के टोले के अन्दर अब दूसरी जाति के लोग भी रहने लगे हैं। फिर भी अभी तक सभी गयावाल परिवार एक ही हलके में रहते हैं।

गयावाल अब अपनी विशिष्टता खोते जा रहे हैं। यह बात उनके भोजन, लिबास और संभाषण के तरीकों से स्पष्ट होती है। प्राचीन काल में वे खाने-पीने के मामले में बहुत सतर्क रहते थे। फर्श पर बैठकर भोजन करने की परम्परा थी। भोजन या तो पत्तों पर या धातु (पीतल, काँसे या चाँदी) की थालियों में परोसा जाता था। भोजन एक धार्मिक कृत्य था। भोजन बनाते समय स्त्रियों का कर्मकाण्ड की दृष्टि से पवित्र होना आवश्यक था क्योंकि परिवार के सदस्यों को देने के पहले भोजन का पारिवारिक देवता को भोग लगाया जाता था। पुरूष और बच्चे पहले खाते थे और वयस्क पुरूष भोजन के समय पवित्र होकर बैठते थे। इसका अर्थ था कुरता-कमीज उतारकर या तो रेशमी धोती और चादर पहनना (रेशम कर्मकाण्डीय दृष्टि से सूत की अपेक्षा पवित्र माना जाता है) या ताजा धुली हुई सूती धोती और चादर। भोजन के बाद पत्तलें अपवित्र हो जाती थीं और उन्हें फेंक दिया जाता था। जूठी पत्तलों के स्थान को गोबर से लीपकर पवित्र किया जाता था। भोजन के इस पारम्परिक शैलों को गयावालों ने लगभग त्याग दिया है। अन्वेषिका ने चयनित

उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास की कि अब उनके भोजन करने का ढंग क्या है? उत्तरदाताओं द्वारा दी गई जानकारी को निम्न तालिका में दर्शाया गया हैः-

तालिका -.2

घर पर आप किस प्रकार भोजन करते हैं?

उत्तर	आवृति	प्रतिशत
जमीन (फर्श) पर बैठकर	85	42.5
मेज पर	115	57.5
कुल योग	200	100.0

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि अधिकांश लोग अब फर्श पर बैठकर भोजन नहीं करते हैं। भोजन मेज पर रखा जाता है और कुर्सी पर बैठकर भोजन किया जाता है।

भोजन किस चीज में परोसा जाता है यह जानने के प्रयास भी अन्वेषिका द्वारा किया गया। इसके लिए भी अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछे गये। उत्तरदाताओं द्वारा जो जानकारियाँ दी गई उसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया हैः-

तालिका -.3

भोजन किस चीज में परोसा जाता है?

उत्तर	आवृति	प्रतिशत
पत्तल	00	00.0
काँसे या पीतल का बर्तन	33	16.5
स्टेनलैस स्टील का बर्तन	167	83.5
कुल योग	200	100.0

इस तालिका से यह परिलक्षित होता है कि घर पर प्रतिदिन के भोजन परोसने हेतु अब पत्तल का इस्मेमाल नहीं होता है। 167 उत्तरदाता (83.5 प्रतिशत) का कहना था कि भोजन परोसने के लिए स्टील के बर्तन का इस्तेमाल किया जाता है। मात्र 33 उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि भोजन परोसने हेतु काँसे या पीतल के बर्तन का उपयोग किया जाता है।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जाता है कि बहुसंख्यक मेजों पर खाना पसंद करते हैं और उन्हें खाना स्टील के बर्तन में परोसा जाता है। भोजन का यह ढंग प्रतिष्ठासूचक अथवा सुविधाजनक अथवा दोनों ही है। यह ढंग लौकिकीकरण की वृद्धि में योग देता है, क्योंकि भोजन के बाद मेज को गोबर से पवित्र नहीं किया जा सकता और भोजन के पहले और बाद के पारम्परिक कर्मकाण्ड को छोड़ देने की प्रवृति बढ़ती है।

भोजन सम्बन्धी परम्परागत निषेधों के शिथिल होने से उन सब तरकारियों का खाना बढ गया है, जिन पर अभी तक रोक थी। जैसे-टमाटर, चुकन्दर, गाजर, प्याज। भोजन के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण उभरने लगा है। उसे इस दृष्टि से अधिकाधिक देखा जाने लगा है कि उससे स्वास्थ्य और क्षमता में वृद्धि होती है या नहीं। इस दृष्टि से उस पर विचार निरन्तर घटता जा रहा है कि वह परम्परा से सहमत है अथवा वर्जित। भोजन पर बैठने के पूर्व अब यज्ञ करने की प्रथा का भी नित्य रूप से पालन नहीं होता और नई पीढ़ी के गयावालों में तो छुआछूत के नियम भी शिथिल होते जा रहे हैं।

गयावालों के बाह्य रूप और पोशाक में परिवर्तन हुआ है। शिर पर शिखा और उसमें गाँठ गयावाल की एक विशिष्टता है। इसे तांत्रिक तपस्वी आत्मा का द्वारा मानते हैं, वह स्थल जहाँ से आत्मा संस्कार के समय (संस्कार से पहले व्यक्ति मृतवत है) प्रवेश करती है और मृत्यु के बाद प्रस्थान करती है। शिखा में ही आत्मा का आश्रय है क्योंकि समस्त आध्यात्मिक शक्ति का वही वास है। एक पुरानी वैदिक ऋचा है: 'शून्य है यदि वह रक्षित नहीं है और मुंडित है, उसके लिए शिखा ही रहा है। शिखा को हिन्दू के अविचल भाव से जीवन का सामना करने के निश्चय का प्रतीक समझा जाता है।14 लेकिन गयावालों की युवा पीढ़ी, जो स्कूल और कॉलेज में अध्ययनरत हैं, शिखा नहीं रखते। जो लोग रखते भी हैं उनकी शिखा बाकी बालों से तनिक बड़ी एक केश राशि मात्र होती है।

इनका लिवास या पोशाक भी पारम्परिक नहीं रहा। पारम्परिक पोशाक के स्थान पर, आंशिक रूप से ही सही, पाश्चात्य किस्म की पोशाक व जूते आ गए। युवा पीढ़ी के अधिकांश गयावाल पाश्चात्य किस्म की पोशाक पहनते हैं। पर वे भी जब विष्णुपद मंदिर पूजा करने जाते हैं तो अपने पारम्परिक पोशाक पहन लेते हैं। पोशाक में परिवर्तन

कर्मकाण्डीय शुद्धता के बारे में विचारों का क्रमिक रूप से कमजोर होने का द्योतक है। उदाहरण के लिए पहले भोजन करते समय अथवा परोसते समय कर्मकाण्डीय रूप से शुद्ध वस्त्रों को पहनना पड़ता था। इसका अर्थ था या तो ताजा धुली सूती धोती या रेशमी धोती और एक शुद्ध ऊपर का वस्त्र। कमीज पहनना प्रतिबन्धित था, परन्तु जैसे-जैसे पाश्चात्य वस्त्र लोकप्रिय हुए गयावालों ने कमीज पहनकर भोजन करना शुरू कर दिया।

इनके संभाषण के तरीके में भी बदलाव आया है। पहले वे गयावाली या मगही ही बोलते थे। परन्तु अब गयावाल अपने जजमानों की भाषा बंगाली, मराठी और तमिल भी बोल लेते हैं। दैनिक कर्मकाण्ड में लगनेवाला समय भी निरन्तर कम होता जा रहा है। इंगाल्स15 ने कहा है, "परिवार का मुखिया धार्मिक कृत्यों में, संध्या में, स्नान में, पूजा में, अग्नि कृत्य में, वेदपाठ में दिन में पाँच घंटे या उससे भी अधिक समय लगाता है। उसकी पत्नी या उसके परिवार की कोई अन्य स्त्री घर में स्थापित देवमूर्तियों की पूजा में रोज एक घंटा लगाती है।' पर किसी के दिन में पाँच घंटे कर्मकाण्ड में लगाने के लिए यह आवश्यक है कि या तो उसका कोई स्वतंत्र आमदनी का साधन हो अथवा उसका पुरोहित का ही धंधा हो। यह सत्य है कि गयावालों का धंधा पुरोहिती का है। पर वह सुबह ही तीर्थयात्रियों की तलाश में विष्णुपद मंदिर निकल जाते हैं और शाम के वक्त भी तीर्थयात्रियों को श्रृंगार दर्शन कराने के लिए जाते हैं। अतः उनके लिए कर्मकाण्ड, प्रार्थना, उपवास आदि का जीवन बिताना और अपवित्रता के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना अधिकाधिक कठिन हो गया। मिल्टन सिंगर16 ने मद्रास के ब्राह्मणों में भी ऐसी ही प्रक्रिया देखी है, "अपनी नई व्यस्तताओं में कम-से-कम समय इस बात के लिए मिलता है कि संस्कृत ज्ञान प्राप्त कर सकें और धर्मशास्त्र द्वारा विहित कर्मकाण्ड का पालन कर सकें।' '

जीवन-चक्र के विभिन्न मोड़ों पर होने वाले संस्कारों में कुछ संक्षेप हुआ है। साथ ही उनके नितान्त सामाजिक पक्षों ने पहले से ज्यादा महत्व प्राप्त कर लिया है। कुछ ऐसे संस्कारों को, जैसे-नामकरण, चैल, उपाकर्म को छोड़ने की प्रवृति शुरू हो रही है। लड़कियों के यौवनारम्भ पर वह विस्तृत कर्मकाण्ड नहीं किया जाता जो कुछ दशक पहले तक

अनिवार्य था। मृत पति के दाह-संस्कार के अंग के रूप में ब्राह्मण विधवा का मुण्डन भी नहीं किया जाता और शिक्षितों में विधवा-विवाह को इतना अधिक निद्य नहीं समझा जाता है।

संस्कारों को न केवल छोड़ा या संक्षिप्त किया जाता है, बल्कि उन्हें एक-दूसरें के साथ मिला दिया जाता है, यद्यपि ऐसा अपेक्षाकृत कम होता है। इस भाँति विवाह संस्कार को आरम्भ में उपनयन संस्कार के साथ और अन्त में गर्भाधान संस्कार के साथ मिलाया जाता है। वास्तव में केवल दाह-संस्कार और वार्षिक श्राद्ध ही पहले की-सी कट्टरता से किये जाते हैं।

जहाँ तक विवाह संस्कार का सम्बन्ध है, अन्वेषिका ने यह जानने का प्रयास की कि गयावालों के बीच विवाह की कौन-सी प्रथा का प्रचलन है? इस जिज्ञासा की शांति के लिए अन्वेषिका ने अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से जानकारी हासिल की। उत्तरदाताओं द्वारा जो जानकारियाँ उपलब्ध करायी गई उसे निम्न तालिका में दर्शाया गया हैः-

तालिका -.4

आप की जाति में विवाह की कौन-सी प्रथा प्रचलित है?

उत्तर	आवृति	प्रतिशत
बहिर्विवाह	000	00.0
अन्तर्विवाह	200	100.0
कुल योग	200	100.0

इस तालिका से यह विदित होता है कि शत-प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि उनकी जाति में अन्तर्विवाह का प्रचलन है। अन्तर्विवाह के द्वारा ही उनके जाति समूह को सीमित रखा जाता है। तो भी हाल में एक गयावाल नवयुवक ने दक्षिण भारत की एक ब्राह्मण लड़की से विवाह किया। यह विवाह जाति गुरू द्वारा सम्पन्न किया गया था जो स्वयं दक्षिण के ही थे। इस कारण गयावालों को इस विवाह सम्बन्ध से कोई विरोध न रहा। ये तो गयावालों के बीच तलाक तथा विधवा-विवाह का प्रचलन नहीं

है। पर हाल में गयावालों के बीच एक विधवा-विवाह हुआ है। अन्य उँची जातियों की तुलना में गयावालों में अभी भी अल्प आयु में ही विवाह होता है।

प्राचीन काल में गयावालों के बीच सयुंक्त परिवार पाया जाता था, जिसमें तीन-चार पीढ़ी के पुरूष अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ एक ही मकान में रहते थे और उनकी संपत्ति संयुक्त होती थी। साथ ही उनका भोजन भी एक ही रसोई घर में बनता था। इसलिए एक ही साथ खाते-पीते और सोते थे। परन्तु इनके बीच भी अब संयुक्त परिवार का विघटन हुआ और एकाकी परिवार का प्रचलन हुआ। आजकल इनके बीच केवल 45 प्रतिशत परिवारों की ही प्रकृति संयुक्त परिवार की है। शेष परिवार एकाकी परिवार ही है। गयावालों के बीच टूटे हुए परिवार भी हैं। इसमें केवल एक ही सदस्य हैं, जो प्रायः विधवा या विधुर ही होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि गयावाल समाज में वृद्धों की अवहेलना होती है। उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है।

प्रतिद्वंदिता, दलबंदी, संदेह और ईष्र्या की भावनवा भी गयावालों के बीच पायी जाती है। यह उनके सुधारकों तथा कलाकारों के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा व्यवसायिक संसर्गों तथा उनमें होने वाली विफलताओं से साबित होता है। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के विगत वर्षों में अनेक संघों का संगठन हुआ। संघों के संगठन के लिए दूसरी जाति के लोगों से भी सहायता माँगी गई थी। परन्तु सहायता मिलने के बदले इन कार्यकत्र्ताओं को बहुत से स्थानों पर विरोध का भी सामना करना पड़ा। वास्तव में संघों का संगठन तो हुआ, परन्तु गयावालों की आपसी प्रतिद्वंदिता, द्वेष तथा ईष्र्या के कारण ये संघ अधिक दिनों तक नहीं चल सका। आज केवल एक ही संघ विद्यमान है। बाकी सब समाप्त हो गये।

केवल तीर्थ-वृत्ति सुधारिणी सभा, जिसका गठन सन् 1930 ई. में हुआ था, लम्बी अवधि तक चली। इसका पूरा श्रेय इसके स्थायी मंत्री को जाता है। इस सभा का मुख्य उद्देश्य था- गयावालों की दशा को सुधारने के लिए नये तरीकों और साधनों की खोज करना, आढ़तों और दलालों से अपने व्यवसाय की रक्षा करना तथा गयावालों के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में परिवर्तन लाना। सन् 1931 ई. में इस संघ ने माधव

मठ का पुनर्संगठन किया, जिसे दक्षिण के किसी गुरू ने गयावालों के जागीरदारी काल में विनष्ट कर दिया था। इस संघ के तत्वाधान में अनेक दूसरे सुधारों के लिए भी प्रयास किया गया। परन्तु गयावालों ने आपसी प्रतिद्वंदिता, द्वेष और ईष्र्या के कारण इसे भी फलने-फूलने नहीं दिया। 1953 में जब इसके मंत्री ने निराश और हताश हो अपने पद को त्याग गयावालों की टोली छोड़ दी और दो मील दूर स्थित एक उद्यान में रहना आरम्भ किया तो इस संघ की भी इति श्री हो गई।

गयावालों को विधि-क्रिया और रीति-व्यवहार सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा उनके जीविका उपार्जान का साधन बन गई। वे तीर्थयात्रियों के साथ जिस ढंग से व्यवहार करते हैं उसे व्यापार ही कहा जा सकता है। अन्य कोई दूसरी संज्ञा इसे नहीं दी जा सकती है। जहाँ तक गयावालों के दैनिक कार्यक्रम का सवाल है, यह कहा जा सकता है कि इसमें लौकिकता आ गई है, विशेष रूप से युवा पीढ़ी में। गयावाल सुबह का पाठ और नित्य की जाने वाली व्यक्तिगत पूजा करते हैं या नहीं इस जिज्ञासा की शांति के लिए अन्वेषिका ने अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से प्रश्न किया। उत्तरदाताओं द्वारा जो जानकारी दी गई उसे निम्न तालिका में दर्शाया गया हैः-

तालिका -.5

क्या आप सुबह का पाठ और दैनिक पूजा प्रतिदिन करते हैं?

उत्तर	आवृति	प्रतिशत
हाँ	121	60.5
नहीं	79	39.5
कुल योग	200	100.0

इस तालिका से यह परिलक्षित होता है कि 121 उत्तरदाताओं (60.5 प्रतिशत) ने यह स्वीकार किया कि सुबह का पाठ और दैनिक व्यक्तिगत पूजा करते हैं, जबकि 79 उत्तरदाताओं (39.5 प्रतिशत) ने कहा कि वे प्रतिदिन व्यक्तिगत पूजा और सुबह का पाठ नहीं करते हैं। ऐसे लोगों में नवयुवक गयावाल की संख्या अधिक है।

विष्णुपद मंदिर में जजमानों और उनके पुरोहितों की भक्ति को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उनमें भक्ति-भाव का कोई चिन्ह दिखाई नहीं पड़ता है। पूजा की

समाप्ति के पहले ही पुरोहित अपने जजमानों से पैसे माँगते हैं। जो जजमान मंदिर में केवल दण्डवत करने या फूल चढ़ाने आते हैं उनकी वे हँसी उड़ाते हैं। अतः यदि यह कहा जाए कि भेंट के रूप में रूपये लेना ही गयावालों की व्यापारिक बुद्धि की एकमात्र प्रवृति हो गई है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। विद्यार्थी (1955)17 ने अधम पुरोहितों की चर्चा इन शब्दों में की है, ‘‘गयावाल समाज की अवस्था बड़ी विचित्र है। वास्तव में कुछ ही लोग धर्म का पालन ईमानदारी के साथ करते हैं, बाकी सब-के-सब पाखण्डी हैं। वे धार्मिक प्रवृति को केवल बहाना करते हैं।.....उन्हें यह सोंचने का समय नहीं रहता कि स्वर्ग में वे कभी भी पहुँचेगें। वे अपनी रोजी के पीछे पागल हैं। उनके लिए प्रार्थना, पूजा, पुण्य, ध्यान, श्राद्ध आदि सब व्यर्थ तथा आडम्बर की बातें हैं। ये सब आध्यात्मिक परिष्कार के नहीं, वरन् जीविका-निर्वाह के साधन हैं।’ ’

यह बात तब और स्पष्ट होती है जब पंडा-जजमानी सम्बन्ध पर ध्यान देते हैं। अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए गयावालों ने अनेक प्रतिनिधियों को नियुक्त किया था। वर्तमान समय में इनकी स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई। आर्थिक अवनति ने उन्हें नौकर रखने या हटाने में असमर्थ कर दिया। नौकरों तथा पुरोहितों के सामने जब बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हुई तो उनका कर्तव्य भी करीब-करीब नियत हो गया। ऐसी स्थिति में गयावालों ने साझेदारी की प्रथा लागू की। सेवा के कामों के लिए जजमानों से प्राप्त भेंट से एक निश्चित प्रतिशत, जो 20 से 30 प्रतिशत होती है, की रकम देने लगे। परन्तु साझेदारी की यह प्रथा भी गयावालों की आपसी फूट तथा शहर के व्यापारिक प्रभाव के कारण पंडा-जजमान सम्बन्ध के लिए उपयोगी साबित नहीं हुई। समय की गति के अनुसार साझेदारी -प्रथा का रूप बदलता गया। यह एक नई प्रणाली के रूप में परिवर्तित हुआ, जिसे अब रोजगारिया-पंडा सम्बन्ध कहा जाता है। रोजगारिया वैसे लोगों को कहा जाता है जो गयावाल तथा तीर्थयात्रियों के साथ दान-दक्षिणा या भेंट में अधिक-से-अधिक हिस्सा पाने के लिए किराये पर काम करते हैं। आजकल रोजगारिया-पंडा सम्बन्ध ही अस्तित्व में है और गया विध-व्यवहार का बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन गया है।

गया में रोजगारियों के अनेक गिरोह हैं। उनमें से कुछ ऐसे हैं जो दिन-रात इसी काम में लगे रहते हैं, कुछ समय पाकर यह काम करते हैं और कुछ मौसम-मौसम में। इसके अलावे कुछ ऐसे रोजगारिया भी हैं जो जगह-जगह जाकर यह काम करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो तीर्थयात्रियों के प्रवेश द्वार में उनकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। अधिकृत पंडों तक तीर्थयात्री नहीं पहुँचे इसके लिए रोजगारियों की अपनी अलग अलग यंत्र-रचना होती है। इस यंत्र-रचना के अन्तर्गत अनेक प्रकार के फरेब और षड्यंत्र हुआ करते हैं। जैसे- सम्मानित तथा पुण्यवान पंडों के पास ले चलने का लालच, अधिकृत पंडों से कम पैसा लेने की प्रतीज्ञा, चापलूसी आदि। तीर्थयात्रियों को फँसाने के लिए ये लोग अनेक उपाय करते हैं और उन्हें उन पंडों के पास ले जाते हैं जो ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा देते हैं।

रोजगारिया-संस्था के स्थापित होने के उपरान्त बहुसंख्यक तीर्थयात्री इनके चंगुल में फँसे रहते हैं। कुछ गयावालों ने आरम्भ में तीर्थयात्रियों और पंडों के बीच बढ़ती हुई इस बिचैलिये को रोकने की कोशिश की, परन्तु गयावालों के बीच आपसी सहयोग नहीं होने के कारण उनकी कोशिश विफल हो गयी। रोजगारिया-संस्था आज इतनी मजबूत हो गई है कि कोई भी गयावाल अब पंडा-जजमानी सम्बन्ध को पुनःस्थापित करने का स्वप्न नहीं दे सकता। दुराचार की इस परिधि का प्रत्येक गयावाल अंग बन गया है। तीर्थयात्रियों से जो दान-दक्षिणा या भेंट प्राप्त होता है उसका अधिकांश भाग रोजगारियों के पास चला जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि रोजगारियों ने गयावालों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है। यही रोजगारिया शहर के बेरोजगारों एवं बदमाशों को प्रश्रय देते हैं। गयावालों ने भी गरीबी तथा नैराश्य की अवस्था में जीविका के साधन के रूप में गुंडागिरी को अपना लिया है। हालांकि वे सार्वजनिक तौर पर अपने को बदमाश या गुंडा नहीं कहते, परन्तु एकान्त में वे इसे जरूर कबूल करते हैं।

इन बातों का प्रतिकूल प्रभाव गयावालों के जातीय संगठन तथा परम्परागत जीवनधारा पर पड़ा। इनकी जीवनशैली इतनी भ्रष्ट हो गई है कि स्वयं गयावाल लोग इसके लिए चिंतित हैं। अपनी धार्मिकता और पवित्रता के लिए विख्यात गयावाल आज

गुंडों का गिरोह माने जाते हैं। उनकी खिल्ली उड़ाना आम बात हो गई है। घृणा के साथ उनका नाम लिया जाता है। वे अपने आदर्श, सामाजिक, धार्मिक तथा पुरोहिती जीवन से बहुत नीचे गिर गये हैं। ब्राह्मणों के जीवन सम्बन्धी नियमों जिसका उल्लेख संस्कृत ग्रंथों में किया गया है, का अब वे पालन नहीं करते हैं। यह बात तब और स्पष्ट हो जाती है जब वे सार्वजनिक जीवन में अपने को धनी और पवित्र दिखाने का प्रयास करते हैं। उन्हें बाहर के लोगों के समक्ष अपनी लौकिकता और गरीबी को दर्शाना अच्छा नहीं लगता है।

इन परिवर्तनों के बावजूद भी जीवन के अनेक क्षेत्रों में गयावालों की परम्परागत प्रवृति पायी जाती है। परम्परागत व्यवसाय के प्रति उनकी धारणा इसका अच्छा उदाहरण है। वे अपने जातिगत व्यवसाय को छोड़कर कोई दूसरा व्यवसाय करना पाप समझते हैं। अपनी आमदनी की पूर्ति वे गैर पुरोहिती कामों से करने की कोशिश नहीं करते हैं। उन लोगों की दृष्टि में नौकरी का अर्थ है गुलामी, स्वतंत्रता का छीना जान, चिंताओं और जिम्मेवारियों का बढ़ जाना आदि। लेकिन इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि दूसरे तीर्थस्थानों के पंडों की भांति गयावाल लोग भी परम्परागत व्यवसाय के अलावे दूसरे काम भी करने लगें।

वस्तुतः गयावाल धर्मनिष्ठ जीवन में विश्वास रखने का एक ढोंग रचते हैं। जिन मान्यताओं और विचारों की वे रट लगाते हैं वे उनके अपने नहीं हैं, बल्कि मनुस्मृति, विष्णुसूत्र तथा धर्म-संस्थापकों के उपदेशों से लिये गये हैं। गयावाल अपने जजमानों के तौर-तरीकों तथा अन्य बाहरी शक्तियों से प्रभावित हुए हैं। जब वे जागीरदारों से सम्पर्क रखते थे तो उन्होंने जागीरदारां से ऐसे तत्व भी ग्रहण किये जो ब्राह्मण पुरोहितों के लिए असंस्कृत समझे जाते हैं। गयावालों के इतिहास को देखने से यह मालूम होता है कि जैसे-जैसे हिन्दू संसार में लौकिकता और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ, गयावालों के जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्र भी इससे प्रभावित हुआ।

लेकिन परिवर्तन का यह सिलसिला एक प्रकार के जीवन से दूसरे प्रकार के जीवन में नहीं जा सका। गयावालों के जीवन में नये-नये तत्वों का योग हुआ, पर उनकी पुरानी जीवन-धारा किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रही। आजकल गयावाल संस्कृति में

संस्कृत, लोक, जागीरदारी तथा अधम जैसे तीन-चार तत्व पाये जाते हैं, जिनका उनके इतिहास में समावेश हो चुका है।

संदर्भ ग्रंथ

1. विद्यार्थी, ललिता प्रसादः उत्तर भारत का एक सांस्कृतिक नगरः गया, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1971, पृ. 79
2. बुचानन, हैमिल्टनः पटना-गया रिपोर्ट, खण्ड-1, पटना, बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, 1811-12, पृ. 100
3. कूक, विलियमः नेटिभ ऑफ़ नॉर्दर्न इंडिया, लन्दन, ए. कांस्टेल कं., 1907
4. मैली, ओ.: गया एण्ड दि गयावाल, कलकत्ता, बंगाल सेक्रेटेरियट प्रेस, 1901
5. बुचाननः वही, पृ. 101, 322
6. काश्यप, ए. सी.: हिस्ट्री ऑफ़ गया, एम. एस. 1952
7. मित्रा, राजेन्द्र लालः बुद्ध गया दि हेरिटेज ऑफ़ शाक्य मुनि, कलकत्ता, बंगाल सेक्रेटेरियट प्रेस, 1878, पृ. 10
8. विद्यार्थी, ललिता प्रसाद: वहीं, पृ. 81
9. बुचानन, हैमिल्टनः वहीं, पृ. 103-104
10. वही, पृ. 104
11. मैली, ओ.: वहीं, पृ. 16
12. कूल, विलियमः वही, पृ. 48
13. वहीं, पृ. 98
14. भट्टाचार्य, एस.: हिन्दुओं के धार्मिक आचार, केनेथ मौर्गन द्वारा सम्पादित 'हिन्दुओं का धर्म में, न्यूयार्क, 1953, पृ. 165
15. इंगाल्स, डीः ब्राह्मण परम्परा, मिल्टन सिंगर द्वारा सम्पादित पारम्परिक भारतः ढाँचा और परिवर्तन में, पृ. 6
16. सिंगर, मिल्टनः एक सर्वदेशीय केन्द्र में महान परम्पराः लेखक द्वारा सम्पादित पारम्परिक भारतः ढाँचा और परिवर्तन में, पृ. 176
17. विद्यार्थी, ललिता प्रसादः लाइफ हिस्ट्रीज ऑफ़ सिक्सटीन गयावाल इन्फारमेन्ट्स, 1955, पृ. 21, 8